Notes

हिन्दी साहित्य का काल-विभाजन

भूमिका :- मोटे तौर पर हिन्दी भाषा का विकास 1000 ई० के आस-पास माना जाता जाता है। तब से लेकर अब तक लगभग 1000 वर्षों का जितना भी साहित्य हिन्दी ~~प्रदेश~~ प्रदेश में उपलब्ध होता है, वह हिन्दी साहित्य है। अध्ययन की सुविधा के लिए यह अत्यन्त आवश्यक समझा गया कि इस दीर्घ अवधि को कालखण्डों में विभक्त कर लिया जाय। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक इतिहासकारों ने काल-विभाजन का कोई प्रयास है, न शिवसिंह सेंगर द्वारा रचित 'शिवसिंह सरोज' में। सर्वप्रथम सर जार्ज ग्रियर्सन ने 'मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान' में कालक्रमानुसार वर्णन करते हुए सम्पूर्ण पुस्तक को ग्यारह खण्डों में विभक्त किया है, जिसे स्थूल रूप से काल-विभाजन कह सकते है, परन्तु वह कोई व्यवस्थित काल-विभाजन नहीं है।

1. **मिश्रबन्धुओं का काल-विभाजन** :- काल-विभाजन का सर्वप्रथम प्रयास मिश्रबन्धुओं द्वारा रचित

"मिश्रबन्धु विनोद" (सन् 1913) में किया गया है। उनके द्वारा प्रस्तुत काल-विभाजन निम्नवत् है -

1. आरम्भिक काल
   - पूर्वारम्भिक काल — संवत् 700 वि - 1343 वि.
   - उत्तरारम्भिक काल — संवत् 1344 वि - 1444 वि.
2. माध्यमिक काल
   - पूर्व माध्यमिक काल — संवत् 1445 वि - 1560 वि.
   - प्रौढ़ माध्यमिक काल — संवत् 1561 वि - 1680 वि.
3. अलंकृत काल
   - पूर्वालंकृत काल — संवत् 1681 वि - 1790 वि
   - उत्तरालंकृत काल — संवत् 1791 वि - 1889 वि
4. परिवर्तन काल — संवत् 1890 वि - 1925 वि
5. वर्तमान काल — संवत् 1926 वि से अब तक

* मित्रबंधुओं के इस काल-विभाजन में स्पष्ट रूप से कुछ त्रुटियाँ विद्यमान है, यथा-

(i) इस काल-विभाजन का कोई सुस्पष्ट आधार नहीं है। एक कालखण्ड के उपरान्त दूसरे कालखण्ड में कविता के स्वरूप में परिवर्तन क्यों हुआ, इस प्रश्न का कोई समुचित उत्तर नहीं दिया गया है।
(ii) विभिन्न कालखण्डों के नामकरण में भी एक जैसी पद्धति नहीं अपनाई गई है।
(iii) हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रारम्भ मित्रबन्धुओं ने संवत् 700 वि. से माना जब कि हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ 1000 ई. के बाद ही हुआ।
(iv) परिवर्तन काल भी यहाँ अस्वाभाविक ही लगता है, क्योंकि एक काल के उपरान्त दूसरा काल आने पर बीच में परिवर्तन तो होता ही है।

* संभवतः इन्हीं न्यूनताओं को दृष्टिगत रखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मित्रबंधुओं के काल-विभाजन पर व्यंग्य करते हुए अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा है - "सारे रचना काल को केवल आदि, मध्य, पूर्व उत्तर इत्यादि खण्डों में आँख मूँदकर बाँट देना- यह भी न देखना कि किस खण्ड के भीतर क्या आता है, क्या नहीं - किसी वृत्त-संग्रह को इतिहास नहीं बना सकता।"

* स्पष्ट है कि वे मित्रबंधुओं द्वारा रचित 'मिश्रबन्धु विनोद' को 'कविवृत्त-संग्रह' तो अवश्य मानते है, पर इसे इतिहास कहने में उन्हें संकोच है।

2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का काल-विभाजन :- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में काल-विभाजन किया एवं विभिन्न कालखण्डों के जो नाम दिए, वे निम्नवत् हैं :-

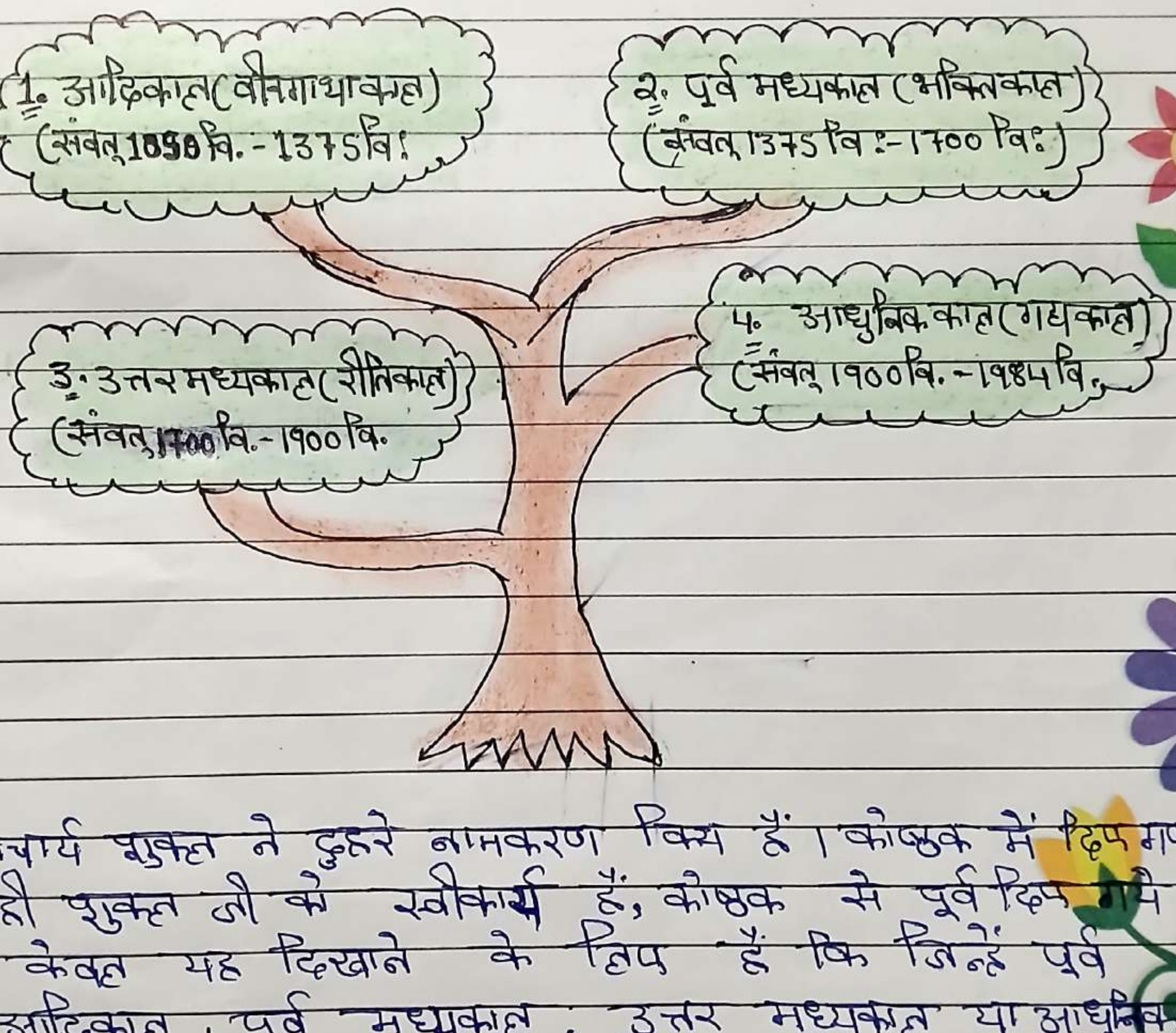

आचार्य शुक्ल ने दुहरे नामकरण किए हैं। कोष्ठक में दिए गए नाम ही शुक्ल जी को स्वीकार्य हैं, कोष्ठक से पूर्व दिए गये नाम केवल यह दिखाने के लिए हैं कि जिन्हें पूर्व में आदिकाल, पूर्व मध्यकाल, उत्तर मध्यकाल या आधुनिक काल कहा जाता है, उनके लिए उचित नाम क्रमशः वीरगाथा काल, भक्ति काल, रीतिकाल एवं गद्यकाल हैं।

★ शुक्ल जी के काल विभाजन की विशेषताएँ :- शुक्ल जी द्वारा किया गया यह काल-विभाजन सरल, ~~स्पष्ट~~ स्पष्ट एवं तर्कसंगत है। ~~प्राय~~ यही कारण है कि परवर्ती इतिहास लेखकों ने प्रायः इसी का आधार ग्रहण करते हुए अपने काल-विभाजन प्रस्तुत किए। इस काल-विभाजन की कई विशेषताएँ मिश्र बंधुओं के काल-विभाजन की तुलना में बताई जा सकती हैं, यथा :-

(i) इसमें हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ 1050 वि. से मानकर अपभ्रंश की उन रचनाओं को हिन्दी में ~~स्थान~~ स्थान नहीं दिया गया जो मिश्रबंधुओं के द्वारा हिन्दी में ~~स्थान नहीं~~ ~~दिया गया को मिश्रबंधुओं के द्वारा हिन्दी साहित्य का~~ साहित्य का प्रारम्भ 700 वि. से मान लेने का कारण हिन्दी में समाविष्ट कर ली गई थी।

(ii) मिश्रबंधुओं के काल-विभाजन में जहाँ कालखण्डों की संख्या आठ तक पहुँच गयी थी, वहीं इस काल-विभाजन में कालखण्डों की संख्या चार तक सीमित कर दी गई है।

(iii) उपर्युक्त विशेषताओं के कारण शुक्ल जी का काल-विभाजन अधिक उपयोगी सरल तथा सुबोध बन पड़ा है।

(iv) कालों के नामकरण में एक जैसी पद्धति अपनाई जा सकती है।

★ शुक्ल जी के काल-विभाजन में यद्यपि अनेक विशेषताएँ हैं तथापि उसमें कुछ न्यूनताएँ भी रह गयी हैं

शुक्ल जी ने कालों के जो नामकरण किए हैं, वे भी प्रायः परवर्ती इतिहास लेखकों ने स्वीकार कर लिए हैं। केवल वीरगाथा काल के नाम पर विद्वानों को अधिक आपत्ति रही है। वास्तव में शुक्ल जी के समय तक जो कुछ सामग्री उपलब्ध थी और जिस रूप में उपलब्ध थी, उसकी प्रामाणिकता की जाँच तब तक नहीं हो पायी थी, अतः उस सामग्री के आधार पर जो भी निष्कर्ष वे निकाल सकते थे, उन्होंने निकाले। अब यदि बाद में किए गए अनुसंधानों से कुछ ग्रन्थों की प्रामाणिकता संदिग्ध हो उठी हो या कुछ रचनाएँ परवर्ती काल की प्रमाणित भी हो गयी हों, तो उसके लिए शुक्ल जी को कहाँ तक दोष देना उचित है? उन्होंने भक्तिकाल, रीतिकाल एवं गद्यकाल नाम देकर साहित्य के इतिहास के विद्यार्थियों के लिए एक सुगम मार्ग बना दिया। अपनी सरलता, स्पष्टता एवं सुबोधता के कारण प्रायः यही नाम बाद में स्वीकार कर लिए गए।

3. डॉ॰ रामकुमार वर्मा का काल-विभाजन :- शुक्लोत्तर इतिहासकारों में से अनेक ने शुक्ल जी के काल-विभाजन को संशोधित कर उसे नया रूप देने का प्रयास किया, पर उनमें से कोई भी उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं कर सका। केवल डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने इस सम्बन्ध में कुछ नवीनता का समावेश किया। उन्होंने अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में जो काल-विभाजन प्रस्तुत किया, वह इस प्रकार है -

1. संधिकाल (750वि.-1000वि)
2. चारणकाल (1000वि.-1375वि.)
3. भक्तिकाल (1375वि.-1700वि.)
4. रीतिकाल (1700वि.-1900वि.)
5. आधुनिककाल (1900वि.-से अब तक)

इस काल-विभाजन में शुक्ल जी के काल-विभाजन की तुलना में दो संशोधन किए गए हैं। एक तो प्रारम्भ 750 से मानकर संधिकाल नामक एक नव कालखण्ड के अस्तित्व को स्वीकार किया। उनकी मान्यता है कि यह वह कालखण्ड है जिसमें अपभ्रंश और हिन्दी की संधि हो रही थी अर्थात् अपभ्रंश समाप्त होती जा रही थी और हिन्दी अपना रूप ग्रहण करती जा रही थी (वस्तुतः यह संशोधन गुणात्मक न होकर दोषपूर्ण ही अधिक है। हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रारम्भ 10वीं शताब्दी से पूर्व मानना एक भ्रांति ही है, क्योंकि उस समय की रचनाएँ हिन्दी भाषा में न होकर अपभ्रंश की रचनाएँ होती थी। वर्मा जी ने अपभ्रंश की रचनाओं को हिन्दी में समेटकर वही भूल की है जो मिश्रबंधुओं ने की थी। दूसरा संशोधन इस काल-विभाजन में यह दिखाई पड़ता है कि शुक्ल जी जिसे वीरगाथा काल कहते हैं, उसे डॉ. वर्मा चारण काल कहने के पक्ष में हैं। वस्तुतः इन दोनों नामों में कोई तात्विक अन्तर नहीं है। वीरगाथा के रचयिताओं को ही चारण कहते हैं। अतः शुक्ल जी ने नामकरण रचनाओं (वीरगाथाओं) के आधार पर किया

तो वर्मा जी ने यह नामकरण सिर्फ रचयिताओं (चारणों) के आधार पर। शेष सभी काल ज्यों-के-त्यों हैं। आधुनिककाल को शुक्ल जी ने गद्य की प्रधानता के कारण गद्यकाल कहना अधिक समीचीन माना है, जबकि वर्मा जी उसे आधुनिक काल कहना ही उपयुक्त मानते हैं।

निष्कर्ष : यह कि वर्मा जी का यह काल-विभाजन शुक्ल जी के काल-विभाजन में कोई मौलिक परिवर्तन या संशोधन कर सकने में असमर्थ है।

5. **डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त का काल विभाजन** :- आचार्य गणपतिचंद्र गुप्त ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' में पहली बार शुक्ल जी के काल-विभाजन को अयुक्तिसंगत ठहराते हुए नवीन ढंग से काल-विभाजन किया है। वे शुक्ल जी की इस मान्यता को तो स्वीकार करते हैं कि साहित्य का विकास जनता की चित्तवृत्ति के अनुरूप होता है, किन्तु शुक्ल जी की इस धारणा से सहमत नहीं हैं कि किसी एक कालखण्ड में एक विशेष प्रवृत्ति की प्रधानता रहती है। उनकी मान्यता है कि हिन्दी का साहित्यिक क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसमें एक ही युग में अनेक प्रवृत्तियाँ एक साथ चलती हुई दिखाई पड़ती हैं। निष्कर्ष : यह है कि वीरता, शृंगार, भक्ति आदि की धारणायें एक साथ सभी युगों में देखी जा सकती हैं।

आचार्य गणपतिचन्द्र गुप्त ने हिन्दी के प्रारम्भिक काल एवं मध्यकाल की काव्य सामग्री को मुख्यतः तीन केंद्रों में विभक्त किया है :-

Notes

1. धर्माश्रित काव्य 2. राज्याश्रित काव्य 3. लोकाश्रित काव्य

इनमें से प्रत्येक केंद्र में अनेक काव्य-परम्पराओं का उदय एवं विकास हुआ डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने अपने 'हिन्दी साहित्य के वैज्ञानिक इतिहास' में जो काल-विभाजन प्रस्तुत किया है, वह इस प्रकार है:

हिन्दी साहित्य का काल विभाजन

- प्रारम्भिककाल (1184 ई - 1350 ई)
- मध्यकाल (1350 ई.-1857 ई)
  - पूर्व मध्यकाल (1350 ई - 1500 ई)
  - मध्य मध्यकाल (1500 ई - 1600 ई)
  - उत्तर मध्यकाल (1600 ई - 1857 ई)
- आधुनिककाल (1857 ई.-1965 ई)

आधुनिक काल का विकास वे भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 ई. से स्वीकार करते है और इसमें पूर्ववर्ती काव्य-परम्पराओं का उल्लेख न कर नवीन काव्य-परम्पराओं यथा- भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावादी युग, प्रगतिवादी युग एवं प्रयोगवादी युग आदि का उल्लेख करते हैं।

Notes

मध्यकाल में उन्होंने 11 काव्य-परम्पराओं का उल्लेख किया है जिनमें से धर्माश्रय में चार, राज्याश्रय में पाँच और लोकाश्रय में दो काव्य-परम्परायें है।

4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी :- आचार्य शुक्ल के उपरांत यदि किसी अन्य विद्वान की मान्यताओं को हिन्दी जगत ने नतमस्तक होकर स्वीकार किया है तो वे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ही है, जिन्होंने आदिकाल के सम्बन्ध में पर्याप्त कार्य किया है। द्विवेदी जी ने अपभ्रंश और हिंदी के संबंध में यह मत व्यक्त किया है: "इस प्रकार दसवीं से चौदहवीं शताब्दी का काल, जिसे हिंदी का आदिकाल कहते है, भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश का ही बढ़ाव है। इसी अपभ्रंश के बढ़ाव को कुछ लोग पुरानी हिंदी उत्तरकालीन अपभ्रंश कहते है और कुछ लोग पुरानी हिंदी। बारहवीं शताब्दी तक निश्चित रूप से अपभ्रंश भाषा ही पुरानी हिंदी के रूप में चलती थी, यद्यपि उसमें नये तत्सम शब्दों का आगमन शुरू हो गया था। इस प्रकार वे अपभ्रंश को हिंदी से अलग रखना चाहते है, फिर भी उन्होंने अपभ्रंश के उत्तरकालीन साहित्य को आदिकाल की सामग्री मान कर उसका विवेचन किया है, ~~फिर~~ भी उनके वक्तव्य से यह सिद्ध हो जाता है कि उत्तर अपभ्रंश, हिन्दी का ही आरंभिक रूप है। उनके अनुसार अपभ्रंश में शब्दों के तद्भव रूपों के प्रयोग की प्रवृत्ति थी, किंतु जब उसमें तत्सम रूपों के प्रयोग की प्रवृत्ति विकसित होने लगी, तब एक नयी भाषा का रूप उभरा, जिसे हिंदी कहना चाहिए। अतः उन्होंने संवत् 1050 - से 1375

Topic

Notes

Date

के समय और विद्वानों द्वारा नामकरण संबंधी मतों का खण्डन करते हुए उसे आदिकाल की संज्ञा प्रदान की।

* निष्कर्ष : ~~निष्कर्ष~~ निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते है कि शुक्ल जी की काल-विभाजन पद्धति का आधार तर्कसंगत और उपयुक्त है। विभिन्न ~~प्रवित~~ प्रवृतियों के आधार पर किया गया काल-विभाजन एवं उनका नामकरण जहाँ साहित्य के इतिहास के अध्येताओं के लिए सुविधाजनक सिद्ध हुआ है, वहीं दूसरी ~~औ~~ ओर हिंदी साहित्य के विकासक्रम का पूर्ण परिचय देने में भी समर्थ है।